Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

वेद व वेदेतर ग्रन्थों में "सृष्टि-प्रक्रिया" की अवधारणा

डॉ. अश्विनी कुमार
"भूतपूर्व शोधच्छात्र"
संस्कृतविभाग, कलासंकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश- सृष्टि-प्रक्रिया विषयक तथ्य सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय तथा इस वैदिक वाङ्मय के इतर ग्रन्थों में भी प्राय: प्राप्त होते हैं, जिसमें इन ब्रह्माण्ड की अनसुलझी पहेलियों को अत्यन्त रोचक व रमणीय ढंग से प्रस्तुत कर समझाने का प्रयास किया गया है कि इस जगत् के प्रादुर्भूत के समय क्या स्थिति-परिस्थिति उत्पन्न हुई होगी । वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत सर्वप्रथम हमे ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त के प्रथम मण्डल से सृष्टि विषयक तथ्य प्राप्त होते है तथा साथ ही साथ इस मन्त्र के माध्यम से यह भी ज्ञात होता है कि यज्ञ कर्म के द्वारा ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् का निर्माण हुआ है । इसी प्रकार सृष्टि प्रक्रिया का ज्ञान वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत प्राप्त संहिताओं में अन्य तीन वेद यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद एवं ब्राह्मणों, आरण्यको, उपनिषदों तथा वैदिक वाङ्मय से इतर ग्रन्थों पुराण, दर्शन जैसे ग्रन्थों से भी सृष्टि विषयक तथ्य बहुतायत में उपलब्ध होते हैं । उपरोक्त ग्रन्थों में सृष्टि-विषयक तथ्यों का विवेचन करना ही मेरा अभीष्ट है ।

मुख्य शब्द – सृष्टि-जगत्, सृष्टिमीमांसा, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, लोक-लोकान्तर, सत्-असत्, त्रिगुणमयी, नास्तिक व आस्तिक सम्प्रदाय, चार्वाक, मूल-प्रकृति, पञ्चतन्मात्राएँ, पञ्चमहाभूत ।

दार्शनिक चिन्तन सभ्य मनुष्य का स्वभाव है । सभ्यता के पुरातन इतिहास में दार्शनिक चिन्तन का विकास कुछ ही देशों में हुआ, जिसमें भारतवर्ष का प्रमुख स्थान माना जाता है । दार्शनिक चिन्तन का प्रारम्भ इस प्रश्न के साथ हुआ कि इस दृश्यमान जगत् के मूल में कोई तात्विक सत्ता है या नहीं । मानव ने अनादि काल से ही इस विराट् व्यवस्थित एवं विचित्र जगत् के रहस्यों को जानने का प्रयास करता रहा है कि हमारा अस्तित्व क्या है? हम प्रादुर्भूत कहाँ से हुए हैं? इस

जगत् का वास्तविक स्वरूप कैसा है? इस चराचर सृष्टि का वास्तविक स्वरूप क्या है? इस सृष्टि का रहस्य क्या है? इत्यादि सृष्टि विषयक अनेक प्रश्न अनसुलझे पहेली के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। मनुष्य के समक्ष अपने जीवन एवम् इस सम्पूर्ण जगत् के मूल तत्त्वों से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों का विवेचन करना विज्ञान और दर्शन दोनों की ही समस्या रही है।

'सृष्टि' शब्द की व्युत्पत्ति '√सृज्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगकर हुई है। जिसका तात्पर्य जगत् की रचना से लिया गया है। '√सृज्' का अर्थ भी उत्पन्न करना होता है। दर्शन की समस्त समस्याओं में से सृष्टिमीमांसा एक प्रमुख एवं विराट् समस्या बतलाई जाती है। वैदिक वाङ्मय व भारतीय दर्शन में इस चराचर भौतिक जगत् की व्याख्या करने के प्रयत्न मानव के आरम्भ काल से ही इनके मन में सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धित जिज्ञासा विषय के रूप में उद्भूत जोते रहें हैं। सर्वप्रथम हमें संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषदों में सृष्टि सम्बन्धी विचार ही प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में सृष्टि-प्रक्रिया का विवेचन है जो इस प्रकार हैं-अग्निसूक्त(1/1 इत्यादि), अस्यवामीय सूक्त(1/164), पुरुष सूक्त(10/90), हिरण्यगर्भ सूक्त(10/121), नसदीय सूक्त(10/129), वाक् सूक्त(10/125), सज्ञान/ऋत सूक्त(10/191) एवं यत्र-तत्र अन्य सूक्तों में प्राप्त हो जाते है। इस प्रकार ऋग्वेद के किंचित सूक्तों में से प्रथम सूक्त 'अग्निसूक्त' है, जिसमें अग्नि देवता का वर्णन प्राप्त होता है। इस ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही यज्ञ कर्म के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति बतलाई गई है-

"ॐ अग्निमिळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥"[1]

'नासदीय सूक्त' की ऋचा में सृष्टि के विषय में यह वर्णन मिलता है कि 'सर्गकाल के पूर्व प्रलयावस्था में सब कुछ असत् था, यह बात नहीं है उस समय सत् भी नहीं था। यह दृश्यमान लोक-लोकान्तर और उससे परे व्यवहार्य आकाश है, वह भी न था। इसे इस मन्त्र के माध्यम से देखा जा सकता है -

"नासदासीनो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्"॥[2]

कहीं कोई आवरण करने वाला भी नहीं था। यह सब कुछ कहाँ, जिसका भोग किया जाये? उस समय कोई भोक्ता भी नहीं था। जब लोक-लोकान्तर, भोक्ता-भोक्तृ के आवरण तत्त्व और पृथिव्यादि भूत न थे, तब गम्भीर समुद्र कैसे हो सकता था? इस ऋचा में जगत् को एक रहस्यमय पहेली के रूप में प्रस्तुत किया गया है-

"तम आसीत्तमसा गुळहमग्रेप्रऽकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।"[3]

यज्ञ की अवधारणा के विकास के पश्चात् सृष्टि-प्रक्रिया को यज्ञ के रूप में कल्पित किया गया, जिसका वर्णन ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में प्राय: उपलब्ध है । इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति के लिए देवताओं एवम् ऋषियों ने जो यज्ञ किया, उसमें विराट् रूप पुरुष को ही हवि के रूप में कल्पित किया गया है-

"यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥" [4]

इस 'पुरुष सूक्त' में विराट् पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है । इस सूक्त की उपलब्धता चारों वेदों में है । उस आदिपुरुष से विराट् की उत्पत्ति और तदन्तर इस विराट् को अधिकरण बनाकर एक पुरुष उत्पन्न हुआ । उस पुरुष के उत्पन्न होते ही उसने अपने को देव, मनुष्य आदि के अनेक रूपों में पृथक् कर लिया -

तस्माद् विराळजायत विराजो अधिपूरुषः।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।।[5]

इसी प्रकार हिरण्यगर्भ सूक्त में प्रजापति से ही सृष्टि रचना का वर्णन है ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥[6]

ऋग्वेद से ली हुई ऋचाएँ यजुर्वेद में यज्ञ के लिए उपयोगी बन गयी । क्योंकि ऋग्वेद से प्राप्त अग्नि सूक्त की समस्त ऋचाओं को द्वितीय वेद यजुर्वेद में सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है । उस समय में मनुष्य जीवन का एकमात्र उद्देश्य यज्ञ करना रह गया था । क्योंकि यज्ञ के माध्यम से ही मनुष्य सांसारिक क्लेशों से मुक्त हो सकता था । क्योंकि उस समय का श्रेष्ठ ध्येय वाक्य **"यज्ञो यज्ञेन कल्पताम"** अर्थात् 'यज्ञ' यज्ञ के लिए हो, 'कर्तव्य' केवल कर्तव्य के लिए हो – यही श्रेष्ठ आदर्श कहा गया है जिसकी आकांक्षा पूर्ति की कामना मनुष्य के अन्त:मन में रहनी चाहिए । स्पष्टत: कहा जा सकता है कि यज्ञ सृष्टि का शाश्वत नियम के रूप में निरूपित हुआ है कि इस जगत् में यज्ञ निरन्तर चलायमान रहता है, जिसके कारण यज्ञ 'ऋत' कहलाता है ।[7] यजुर्वेद में ब्रह्मा ही सृष्टि का कारण बतलाया गया है । ब्रह्म को ही सर्वप्रथम इस समस्त जगत् का उत्पादक बतलाया गया है । सामवेद में ब्रह्म द्वारा सृष्टि विवेचन कम ही प्राप्त होते हैं अर्थात् सामवेद में सृष्टि सम्बन्धित विवेचन संक्षिप्त रूप में प्राप्त होते हैं । अथर्ववेद के अस्यवामीय सूक्त में सर्वप्रथम ब्रह्म की ही उत्पत्ति बतलाई गयी है । अथर्ववेद में प्राप्त पुरुष सूक्त के आधार पर पुरुष 'ब्रह्म' का ही एक अन्य नाम है । इस सूक्त के आधार पर सर्वप्रथम विराट् ही उत्पन्न हुआ । इसी प्रकार काल सूक्त व पृथ्वी सूक्त में भी सृष्टि विषयक तथ्य उपलब्ध होते हैं ।

संहिताओ में प्राप्त सृष्टि के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों में भी सृष्टि विषयक तथ्य प्राप्त होते हैं । ऐतरेय ब्राह्मण में बतलाया गया है कि प्रजापति ने ही समस्त जगत् को प्रादुर्भाव किया है । शतपथ

ब्राह्मण के काण्ड 11 और 14 में सृष्टि विषयक अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। जिसमें प्रजापति ही समस्त सृष्टि का विधाता बतलाया गया है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में मात्र असत् की ही सत्ता थी।[8] इसी असत् से सत् सृष्टि की उत्पत्ति हुई।

ब्राह्मण और आरण्यक इन दोनों का कर्मकाण्ड से सम्बन्ध है। आरण्यकों के विषय में महाभारत ग्रन्थ में कहा गया है कि जैसे दधि से नवनीत, मलयागिरि से चन्दन और औषधियों से अमृत प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार वेदों से आरण्यक ले लिया जाता है।[9]

सृष्टि क्या है? उपनिषदों में इसके चार मतों का उल्लेख मिलता है। कुछ उपनिषद् आधिदैविक मानते हैं तो कुछ आध्यात्मिक, अन्य लोग इसे आधिभौतिक मानते हैं, किन्तु ब्रह्मज्ञानी सृष्टि को स्वप्नवत् मानते हैं, जैसे; वृहदारण्यकोपनिषद् कहा गया है कि "सृष्टि का मूल तत्त्व जल(अप्) है। जल से सत् उत्पन्न हुआ, सत् ने ब्रह्म को उत्पन्न किया, बह्म ने प्रजापति को उत्पन्न किया और प्रजापति ने देवों को उत्पन्न किया।[10] अतः इस क्रम से सृष्टि हुई। सृष्टि के सम्बद्ध में छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है कि असत् से सत्, सत् से तेज उत्पन्न हुआ, तेज से जल उत्पन्न हुआ और जल से अन्न उत्पन्न हुआ, अन्न से अण्डज, जीवज एवम् उद्भिज उत्पन्न हुआ।"

"तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति।" [11]

महाभारत में भी सृष्टि के विकास का कारण प्रकृति और पुरूष के संयोग को माना गाया है। श्रीभद्भगवद्गीता महाभारत का ही एक अंश है। श्रीमद्भगवद्गीता में जगत् का वर्णन क्षर-अक्षर और पुरुषोत्तम के रूप में किया गया है। इस जगत् में समस्त जड़ पदार्थ 'क्षर' है। इसे ही 'अपराप्रकृति' कहते हैं। यह अपरा शक्ति भगवान् के साथ अनादि काल से सम्बद्ध है। प्रलय काल में समस्त भूत इसी में लीन हो जाते हैं और इसी से पुनः सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हो जाते है।

'अक्षर तत्त्व' को जीव, पराप्रकृति, पुरुष भी कहते हैं यही जगत् को धारण करता है। यह भूतों का कारण और भगवान् का अंश है तथा मृत्यु हो जाने पर एक शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर में प्रवेश करने वाला और इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करने वाला है।

इसमें पुरुषोत्तम प्रधान तत्त्व है। इन्हें ईश्वर वासुदेव, ब्रह्म आदि भी कहते हैं। सभी भूतों को उत्पन्न तथा नष्ट करने वाला यही प्रधान तत्त्व है। त्रिगुणमयी 'माया' इस पुरुषोत्तम की 'दैवी शक्ति' है जो अभिन्न रहती है। यह पुरुषोत्तम सर्वव्यापी है। जगत् की समस्त जड़ और चेतन वस्तुएं पुरुषोत्तम के ही स्वरूप है। प्रलय काल में समस्त जगत् 'प्रकृति' में ही विलीन हो जाता है। गीता के इस उपरोक्त विचार से यह स्पष्ट होता है कि स्वयं भगवान इस सृष्टि के निमित्त कारण हैं, उन्हीं के माध्यम से इस दृश्यमान जगत् की रचना हुई है।

'पुराण' सृष्टि का मूल 'ब्रह्म' को मानते हैं । जिसका विवरण विष्णु, गरूड़ भागवत आदि पुराणों में मिलता है। 'विष्णु पुराण' में कहा गया है कि सृष्टि के आरम्भ में न दिन था न रात्रि, न आकाश था न पृथ्वी, न अन्धकार था न प्रकाश। केवल श्रोत्रादि इन्द्रियों का प्रधानभूत 'बह्म' था ।

सृष्टि-विज्ञान की व्याख्या भारतीय दर्शन के नास्तिक और आस्तिक सम्प्रदायों से भी हमें उपलब्ध होती है । नास्तिक सम्प्रदाय में सर्वप्रथम चार्वाक दर्शन अपने सृष्टि-विज्ञान की व्याख्या भौतिक परमाणुवाद के अन्तर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु को स्वीकार करता है । सृष्टि और प्रलय की प्रक्रिया इन्हीं चार तत्त्वों के संयोग और वियोग से पूरी होती है । जैन दर्शन के अनुसार जगत् के समस्त भूत- भौतिक, जड़-जगत, अजीव के पुद्गल के विकार हैं । सृष्टि के सम्बन्ध में जैन दार्शनिकों ने इस जगत् के मूल में अनेक तत्त्वों की सत्ता को स्वीकार किया है। इसलिए यह दर्शन बहुत्त्ववाद के समर्थक के रूप में जाना जाता है । बौद्ध दर्शन ने जगत् की सृष्टि के सम्बन्ध में किसी सद्रूप उपादान कारण के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है । उसके अनुसार केवल असत् अथवा शून्य ही वास्तविक और सबकुछ है ।

भारतीय दर्शन के आस्तिक सम्प्रदायों में सांख्य और वैशेषिक का स्थान अन्यतम है । यही दो दार्शनिक सम्प्रदाय हैं; जिसमें सृष्टि-विज्ञान का विस्तृत विवेचन किया गया है और अन्य सभी दर्शन लगभग इन्हीं के मतों को अनुकरण करते हैं । सांख्य दर्शन में जगत् को प्रकृति का परिणाम माना गया है । जगत् की व्याख्या करने के लिए सांख्य दर्शन दो मूल तत्त्वों को स्वीकार करता है । प्रकृति में उसी प्रकार विक्षोभ उत्पन्न होता है, जैसे- चुम्बक-लोहे में । इस विक्षोभ के फलस्वरूप प्रकृति में विद्यमान सत्व, रजस् और तमस् में न्यूनाधिक भाव आता है, जो सृष्टि-प्रक्रिया का कारण बनता है । प्रकृति से 23 तत्त्वों का आविर्भाव होता है । प्रकृति तत्त्व किसी अन्य से उत्पन्न न होने के करण मूल-प्रकृति है । उससे (प्रकृति) उत्पन्न होने वाले महत्, अहंकार और पञ्चतन्मात्राएँ प्रकृति-विकृति दोनों हैं । एकादश इन्द्रियाँ और पञ्चमहाभूत केवल विकृति हैं । पुरूष 25वाँ तत्त्व है, जो किसी का न कारण न कार्य है । इस प्रकार सांख्य दर्शन में सृष्टि प्रक्रिया के 25 तत्त्व स्वीकार किये जाते हैं।

योग दर्शन में सृष्टि प्रक्रिया का अनुमोदन सांख्यवत् हुआ है किन्तु यहाँ पुरुष के अतिरिक्त पुरुष विशेष तत्त्व की भी परिकल्पना की गई है और पतञ्जलि ने उस ईश्वर तत्त्व को वृत्ति निरोध के साधन के रूप में प्रतिपादित किया है।

न्याय-वैशेषिक के सृष्टिवाद को परमाणु सृष्टिवाद कहा जाता है, क्योंकि वह विश्व को पृथ्वी, जल अग्नि और वायु के परमाणुओं के अतिरिक्त ईश्वर के योगदान को भी स्वीकार किया है । अतः न्याय-वैशेषिक का सृष्टिवाद नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर आधारित है । न्याय-वैशेषिकों के अनुसार विश्व का निर्माण जिन चार भौतिक परमाणुओं से हुआ है, वे नित्य हैं । उनकी न सृष्टि होती

है और न विनाश ही होता है । परमाणु सृष्टि निर्माण के मूल कारण हैं । उनके संयोग से समस्त वस्तुओं का निर्माण होता है और उनके विच्छेद से समस्त वस्तुओं का विनाश होता है ।

मीमांसा दर्शन के अनुसार सृष्टि कर्म प्रधान है और वह नित्य है । कुमारिल भट्ट 'सृष्टि' और 'प्रलय' को नहीं मानते और सृष्टि के कर्ता के रूप में या परम्परा के सम्बन्ध को एक सृष्टि से दूसरी सृष्टि से क्रमबद्ध रखने के लिए एक सर्वज्ञ चेतना 'ईश्वर' को ही मानते हैं ।

आचार्य शंकर का मत है कि जगत् ब्रह्म का विवर्त है, क्योंकि ब्रह्म को छोड़कर अन्य सभी पदार्थ 'असत्' हैं । इन पदार्थों का आरोप ब्रह्म पर होता है । 'ब्रह्म' आरोप का अधिष्ठान है । माया के विक्षेप के कारण जो सृष्टि होती है, वह मायिक है, भ्राँति है । ब्रह्म को अधिष्ठान मानकर जो भी कार्य जगत् में होते हैं, वे ही नहीं, अपितु समस्त जगत् ही ब्रह्म का 'विवर्त' है ।

आचार्य रामानुज के अनुसार जीव और प्रकृति ईश्वर के अंशभूत तत्त्व है एवम् ईश्वर जगत् का स्रष्टा है तथा जगत् सत् है । अन्य वैष्णव-वेदान्त सम्प्रदायों का मत भी रामानुज के समान ही हैं ।

इस प्रकार वेद व वेदेतर ग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन हमें बहुतायत में प्राप्त होता है ।

1. ऋग्वेद संहिता 1/1/1
2. ऋग्वेद संहिता 10/129/1
3. ऋग्वेद संहिता 10/129/3
4. ऋग्वेद संहिता 10/90/6
5. ऋग्वेद संहिता 10/90/5
6. ऋग्वेद संहिता 10/121/1
7. ऋतं वै सत्यं यज्ञ: । मैत्रेयी संहिता 1/10/12
8. असद्वा इदमग्र असीदेकमेवाद्वितीयम्.....तस्मादसत: सज्जायत: । छान्दोग्य उपनिषद् 2
9. नवनीतं यथा दध्नो मल्याच्चन्दनं यथा । आरण्यकं च वेदेभ्य औषधिभ्योऽमृतं यथा । महाभारत 1/131/13
10. वृहदारण्यकोपनिषद् (शांकरभाष्यसहित)1/5 गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0- 178
11. छान्दोग्योपनिषद् (शांकरभाष्यसहित) 6/3/1 गीताप्रेस गोरखपुर पृ0-547